

Chapter बारह

महाराज रहुगण तथा जड़ भरत की वार्ता

महाराज रहुगण इतने पर भी अपने प्रकाश-प्राप्त होने के सम्बन्ध में सन्देहशील थे, इसलिए उन्होंने ब्राह्मण जड़ भरत से अपने उपदेशों को तथा उसकी समझ में न आने वाले विचारों को दोहराने के लिए कहा। इस अध्याय में महाराज रहुगण उन जड़ भरत को नमस्कार करता है जिन्होंने अपने वास्तविक रूप को छिपा रखा था। राजा उनके उपदेश से समझ गया कि वे आत्मज्ञान में कितने श्रेष्ठ तथा उन्नत हैं। उसने उनका जिस प्रकार अनादर किया था उसके लिए क्षमा माँगी। अविद्या के सर्प से डसे गये महाराज रहुगण को मानो जड़ भरत के अमृत रूपी शब्दों ने जिला लिया। जिन विषयों पर वार्ता हो चुकी थी उनके सम्बन्ध में शंका रह जाने के कारण उसने बाद में एक-एक करके अनेक प्रश्न पूछे। सर्वप्रथम जड़ भरत के चरणकमलों के प्रति किये गये पूर्व अपराध से वे मुक्त हो लेना चाहते थे।

महाराज रहुगण जड़ भरत के सारगर्भित उपदेशों को, जिन्हें एक भौतिक जीव नहीं समझ सकता, ठीक से न समझ पाने के कारण कुछ-कुछ असन्तुष्ट थे, अतः जड़ भरत ने अपने उपदेशों को और अधिक स्पष्ट करते हुए दुहराया। उन्होंने कहा कि संसार की सभी जीवात्माएँ, चाहे चर हों या अचर, विभिन्न प्रकारों से पृथ्वी के ही रूपान्तर (विकार) हैं। राजा को अपने राज-देह का अत्यन्त गर्व था, किन्तु वह पृथ्वी का ही एक रूपान्तर था। झूठी प्रतिष्ठा के कारण राजा पालकी के कहार के प्रति स्वामी-सेवक जैसा व्यवहार कर रहा था और अन्य जीवात्माओं के प्रति भी निष्ठुर था। फलतः वह जनता को सुरक्षा प्रदान करने में अक्षम था और अज्ञानी होने के कारण उसकी गणना साधु पुरुषों में नहीं की जा सकती थी। यद्यपि विभिन्न वस्तुएँ अपने-अपने रूपान्तरों के कारण विभिन्न नाम (उपाधियाँ) धारण करती हैं, किन्तु इस जगत की प्रत्येक वस्तु पृथ्वी का रूपान्तर है। वस्तुतः ये सभी

किस्में एक ही हैं और अन्त में परमाणुओं में विलीन हो जाती हैं। इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है। अनेक किस्म की वस्तुएँ तथा उनकी उपाधियाँ हमारी मानसिक कूट रचनाएँ हैं। परम सत्य तो मोह से परे है और तीन रूपों—निर्गुणब्रह्म, अर्न्तयामी परमात्मा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्—में प्रकट होता है। अनन्तिम सत्य के परम साक्षात्कार तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही हैं, जो भक्तों द्वारा वासुदेव कहे जाते हैं। जब तक भक्तों के चरण की धूलि को मस्तक पर धारण नहीं किया जाता, तब तक कोई भगवान् का भक्त नहीं बन सकता।

जड़ भरत ने राजा को अपने पूर्वजन्म के सम्बन्ध में भी बताया और कहा कि ईश्वर की कृपा से उन्हें विगत जन्म की सारी घटनाएँ स्मरण हैं। अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण जड़ भरत अत्यन्त सतर्क थे। संसारी पुरुषों से मिलने-जुलने से बचने के लिए उन्होंने गूँगे तथा बहरे जैसे व्यक्ति के आचरण अपना रखे थे। त्रिगुणों की संगति बड़ी प्रबल होती है। भौतिकतावादी पुरुषों की कुसंगति से बचने का एकमात्र उपाय है भक्तों की संगति। उनकी संगति से नौ प्रकार की भक्तियाँ की जा सकती हैं—*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम् अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम् आत्म-निवेदनम्*। इस प्रकार भक्तों की संगति से भौतिक संगति से छुटकारा पाया जा सकता है मूढ़ता के पारावार को पार करते हुए श्रीभगवान् के धाम को प्राप्त हुआ जा सकता है।

रहूगण उवाच

नमो नमः कारणविग्रहाय

स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ।

नमोऽवधूत द्विजबन्धुलिङ्ग-

निगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

रहूगणः उवाच—राजा रहूगण ने कहा; नमः—मेरा नमस्कार है; नमः—नमस्कार; कारण-विग्रहाय—समस्त कारणों के कारण, परमात्मा से प्रकट होने वाले को; स्वरूप-तुच्छीकृत-विग्रहाय—अपने सत्य रूप को प्रकट करके शास्त्रों के विरोधों को दूर करनेवाले; नमः—नमस्कार; अवधूत—हे योगेश्वर; द्विज-बन्धु-लिङ्ग—ब्राह्मण कुल में उत्पन्न पुरुष के लक्षणों के द्वारा (भले ही ब्राह्मण का कर्म न करता हो); निगूढ—प्रच्छन्न; नित्य-अनुभवाय—उसे जिसका शाश्वत आत्म-साक्षात्कार होता हो; तुभ्यम्—तुम्हें।

राजा रहूगण ने कहा—हे महात्मन्, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न हैं। आपके प्रभाव से शास्त्रों के समस्त विरोधभास दूर हो गये हैं। आप ब्रह्म-बन्धु के वेश में अपने दिव्य आनन्दमय स्वरूप को छिपाए हुए हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : ब्रह्म-संहिता से ज्ञात होता है कि श्रीभगवान् समस्त कारणों के कारण (सर्व- कारण-कारणम्) हैं। ऋषभदेव सर्व-कारण स्वरूप श्रीभगवान् के साक्षात् अवतार थे। उनके पुत्र भरत महाराज को, जो अब ब्राह्मण जड़ भरत की भूमिका निभा रहे थे, उनका शरीर उन्हीं सर्वकारणों के कारण से प्राप्त हुआ था; इसलिए उन्हें कारण-विग्रहाय कहा गया है।

ज्वरामयार्तस्य यथागदं सत्

निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः ।

कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेः

ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ज्वर—ज्वर, या ताप के; आमय—रोग से; आर्तस्य—पीड़ित पुरुष की; यथा—जिस प्रकार; अगदम्—औषधि दवा; सत्—सही; निदाघ-दग्धस्य—लू लगने पर; यथा—जैसे; हिम-अम्भः—अति शीतल जल; कु-देह—इस शरीर में, जो मल-मूत्र जैसा गंदी वस्तुओं से पूरित है; मान—गर्व रूपी; अहि—सर्प से; विदष्ट—दंशित, काटा गया; दृष्टेः—दृष्टि वाले का; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ; वचः—शब्द, वाणी; ते—तुम्हारी; अमृतम्—अमृत; औषधम्—दवा; मे—मेरे लिए।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, मेरा शरीर मल से पूर्ण और मेरी दृष्टि गर्व रूपी सर्प द्वारा दंशित है। अपनी भौतिक बुद्धि के कारण मैं रुग्ण हूँ। इस प्रकार के ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के लिए आपके अमृतमय उपदेश वैसे ही हैं जैसे कि धूप (लू) से झुलसे हुए व्यक्ति के लिए शीतल जल होता है।

तात्पर्य : बद्धजीव का शरीर गन्दी वस्तुओं—अस्थि, रक्त, मूत्र, मल इत्यादि—से भरा रहता है। तो भी इस संसार के बुद्धिमान मनुष्य सोचते हैं कि वे रक्त, अस्थि, रक्त, मूत्र तथा मल के योग से बने हैं। यदि ऐसा है, तो फिर इन सर्वसुलभ पदार्थों से अन्य बुद्धिमान व्यक्ति क्यों नहीं बनाये जा सकते? सम्पूर्ण संसार देहात्मबुद्धि से अभिभूत है और भले मनुष्य के रहने के लिए नारकीय परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। जड़ भरत ने राजा रहूगण को जो उपदेश दिये हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वे सर्पदंश की औषधि तुल्य हैं। वैदिक उपदेश झुलसती गर्मी से पीड़ित व्यक्ति के लिए अमृत एवं शीतल जल के समान हैं।

तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थं

प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ।

अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्त-

माख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; भवन्तम्—आपको; मम—मुझको; संशय-अर्थम्—वे विषय जिसका अर्थ मुझे ज्ञात नहीं; प्रक्ष्यामि—कहूँगा; पश्चात्—बाद में; अधुना—इस समय; सु-बोधम्—सरलता से समझ में आ जाने वाला, बोधगम्य; अध्यात्म-योग—आत्म-साक्षात्कार हेतु योग शिक्षा का; ग्रथितम्—रचित; तव—तुम्हारी; उक्तम्—वाणी, वचन; आख्याहि—पुनः विस्तार से समझाइये; कौतूहल-चेतसः—ऐसे उत्कण्ठा से पूर्ण कथनों के मर्म को समझने के लिए जिसका मन अत्यन्त उत्सुक है; मे—मुझको।

यदि किसी विशेष विषय पर मेरी शंकाएँ रह गई हैं, तो मैं उनके सम्बन्ध में आपसे बाद में पूछूँगा। किन्तु इस समय आपने आत्म-साक्षात्कार के लिए जो गूढ़ योग के उपदेश दिये हैं उनको समझ पाना कठिन है। कृपया उन्हें सरल रीति से पुनः कहें जिससे मैं उन्हें समझ सकूँ। मेरा मन अत्यन्त उत्सुक है और मैं इसे भलीभाँति समझ लेना चाहता हूँ।

तात्पर्य : वैदिक साहित्य का उपदेश है—*तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।* बुद्धिमान व्यक्ति को दिव्य विज्ञान (तत्त्व) अच्छी प्रकार जानने के लिए परम उत्सुक (जिज्ञासु) होना चाहिए। इसके लिए उसे गुरु के निकट जाना चाहिए। यद्यपि जड़ भरत ने महाराज रहूगण को प्रत्येक वस्तु विस्तार से समझा दी थी, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी बुद्धि उसे समझने में पूर्ण समर्थ न थी। अतः उसने आगे विवेचना के लिए प्रार्थना की। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.३४) में कहा गया है—*तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।* विद्यार्थी को चाहिए कि गुरु के निकट पहुँच कर पूर्ण समर्पण कर दे (*प्रणिपातेन*)। उसे चाहिए कि उसके उपदेश समझने के लिए वह प्रश्न भी पूछे (*परिप्रश्नेन*)। उसे चाहिए कि गुरु को न केवल समर्पण करे, वरन् उनकी प्रेमपूर्ण सेवा करे (*सेवया*) जिससे गुरु प्रसन्न होकर उसे दिव्य विषय को ठीक से समझा दे। यदि कोई वैदिक उपदेशों को गम्भीरता से सीखना चाहता है, तो गुरु से स्पृहा नहीं रखनी चाहिए।

यदाह योगेश्वर दृश्यमानं

क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ।

न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय

भवानमुष्मिन्भ्रमते मनो मे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; आह—आपने कहा है; योग-ईश्वर—हे योग शक्ति के स्वामी; दृश्यमानम्—भली-भाँति दिखते हुए; क्रिया-फलम्—शरीर को इधर-उधर हिलाने-डुलाने का फल यथा थकान; सत्—विद्यमान; व्यवहार-मूलम्—जिसका आधार केवल शिष्टता है; न—नहीं; हि—निश्चय ही; अञ्जसा—वस्तुतः-वास्तव में; तत्त्व-विमर्शनाय—विमर्श द्वारा सत्य को समझने के लिए; भवान्—आप; अमुष्मिन्—उस कथन में; भ्रमते—चक्कर काट रहा है; मनः—मन; मे—मेरा।

हे योगेश्वर, आपने कहा है कि शरीर को इधर-उधर हिलाने-डुलाने से उत्पन्न थकान प्रत्यक्ष

अनुभवगम्य है, किन्तु वास्तव में कोई थकान नहीं रहती। वह तो कहने के लिए होती है। ऐसे प्रश्नोत्तरों से परम सत्य के विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। आपके इस कथन से मेरा मन कुछ-कुछ विचलित है।

तात्पर्य : देहात्म-बुद्धि के सम्बन्ध में औपचारिक प्रश्नोत्तर से परम सत्य का ज्ञान नहीं होता। शारीरिक सुखों तथा दुखों की औपचारिक समझ परम सत्य के ज्ञान से भिन्न है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि शरीर द्वारा सुख-दुख का अनुभव क्षणिक है; वे तो आत-जाते रहते हैं। मनुष्य को चाहिए कि इनसे विचलित न हो, वरन् इन्हें सहन करके आत्मतत्त्व प्राप्त करने में लगा रहे।

ब्राह्मण उवाच

अयं जनो नाम चलन्पृथिव्यां

यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ।

तस्यापि चाङ्घ्र्योरधि गुल्फजङ्घा-

जानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५ ॥

अंसेऽधि दावीं शिबिका च यस्यां

सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ।

यस्मिन्भवान्रूढनिजाभिमानो

राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणः उवाच—ब्राह्मण ने कहा; अयम्—यह; जनः—पुरुष; नाम—पदवी; चलन्—चलते हुए; पृथिव्याम्—पृथ्वी पर; यः—जो; पार्थिवः—पृथ्वी का रूप; पार्थिव—हे राजा, जिसका शरीर पार्थिव है; कस्य—किस; हेतोः—कारण; तस्य अपि—उसका भी; च—तथा; अङ्घ्र्योः—पाँव; अधि—ऊपर; गुल्फ—टखने; जङ्घा—पिंडली; जानु—घुटने; उरु—जघन, जाँघ; मध्योर—कटि, कमर; शिरः—धर—गर्दन; अंसाः—कंधे; अंसे—कंधा; अधि—ऊपर; दावीं—लकड़ी की बनी हुई; शिबिका—पालकी; च—तथा; यस्याम्—जिस पर; सौवीर-राजा—सौवीर का राजा; इति—इस प्रकार; अपदेशः—विख्यात; आस्ते—हैं; यस्मिन्—जिसमें; भवान्—आप; रूढ—आसीन; निज-अभिमानः—मिथ्या प्रतिष्ठा का भाव; राजा अस्मि—राजा हूँ; सिन्धुषु—सिन्धु राज्य में; इति—इस प्रकार; दुर्मद-अन्धः—अहंकार के वशीभूत, मद से अंधे।

स्वरूपसिद्ध ब्राह्मण जड़ भरत ने कहा—अनेक भौतिक संयोगों में विविध रूप तथा पार्थिव रूपान्तर विद्यमान हैं। कुछ कारणवश ये पृथ्वी पर हिलते-डुलते हैं और पालकीवाहक (कहार) कहलाते हैं। इनमें से वे रूपान्तर जो गति नहीं करते वे पत्थर जैसे स्थूल पदार्थ हैं। प्रत्येक दशा में यह भौतिक देह पाँव, टखना, पिंडली, घुटना, जाँघ, कमर, गर्दन तथा सिर के रूप में मिट्टी तथा पत्थर से बनी हैं। इसके कंधों के ऊपर काठ की पालकी रखी है और उसके भीतर सौवीर का

राजा बैठा है। राजा का शरीर मिट्टी का अन्य रूपान्तर मात्र है, किन्तु उस शरीर के भीतर आप स्थिर हैं और अहंकारवश अपने को सौवीर राज्य का राजा मान रहे हैं।

तात्पर्य : पालकीवाहक तथा पालकी के यात्री के शरीरों का विश्लेषण करते हुए जड़ भरत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वास्तविक प्राणशक्ति तो जीवात्मा है। जीवात्मा भगवान् विष्णु का ही अंश रूप है, अतः इस संसार में समस्त चर तथा अचर वस्तुओं में मुख्य तत्त्व तो भगवान् विष्णु हैं। उनकी उपस्थिति के कारण ही प्रत्येक वस्तु कार्यशील है और कर्म तथा फल होते हैं। जो यह जानता है कि प्रत्येक वस्तु का मूल कारण भगवान् विष्णु हैं उसे तत्त्वज्ञानी समझना चाहिए। यद्यपि राजा रहूगण को राजा होने का अहंकार था, किन्तु वह तत्त्वज्ञानी नहीं था। इसीलिए वह कहारों को, जिनमें स्वरूपसिद्ध ब्राह्मण जड़ भरत भी थे, डाँट रहा था। जड़ भरत द्वारा राजा पर यह पहला आरोप था, जो प्रत्येक वस्तु को पदार्थ मान कर अविद्या के कारण आत्मसिद्ध ब्राह्मण से बोलने का दुस्साहस कर रहा था। राजा रहूगण का तर्क था कि जीवात्मा तो शरीर के भीतर है; अतः जब शरीर थकता है, तो उसके भीतर का जीवात्मा अवश्य कष्ट भोगता होगा। लेकिन अगले श्लोकों में यह भली-भाँति समझाया गया है कि शरीर की थकान से जीवात्मा को कष्ट नहीं होता। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती आभूषणों से लदे एक बच्चे का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि बच्चे का शरीर अत्यन्त सुकुमार होता है, किन्तु न तो उसे थकान का अनुभव होता है और न उसके अभिभावक ही आभूषणों को उतारने के लिए व्यग्र होते हैं। जीवात्मा को शारीरिक सुख-दुख से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। ये तो मानसिक कूट रचनाएँ हैं। जो बुद्धिमान व्यक्ति होगा वह हर चीज का कारण ढूँढ निकालेगा। लौकिक व्यवहार में भौतिक संयोगों तथा परिवर्तन क्रम को तथ्य कहा जा सकता है, किन्तु जीवन-शक्ति, आत्मा, को इनसे कोई सरोकार नहीं रहता। जो भौतिक दृष्टि से असंतुलित हैं, वे शरीर की परवाह करते हैं और “दरिद्र नारायण” की सृष्टि करते हैं। किन्तु यह सच नहीं है कि शरीर के दरिद्र (निर्धन) होने से आत्मा या परमात्मा भी दरिद्र हो जाता है। ऐसा तो अज्ञानी ही कहता है। आत्मा तथा परमात्मा शारीरिक सुख-दुख से सर्वथा पृथक् हैं।

शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्

विष्ट्या निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ।
जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो
न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

शोच्यान्—शोचनीय हैं; इमान्—ये सब; त्वम्—तुम; अधि-कष्ट-दीनान्—अपनी दरिद्रता के कारण बेचारे लोग और अधिक कष्ट उठा रहे हैं; विष्ट्या—बलपूर्वक; निगृह्णन्—पकड़े हुए; निरनुग्रहः असि—तुम अत्यन्त दया से हीन हो; जनस्य—सामान्य लोगों का; गोप्ता अस्मि—मैं रक्षक (राजा) हूँ; विकत्थमानः—डींग मारते हुए; न शोभसे—तुम्हें शोभा नहीं देता; वृद्ध-सभासु—विद्वानों की सभा में; धृष्टः—बढ़-चढ़कर बातें करने वाला, उद्धत।

किन्तु यह सच है कि बेगारी में तुम्हारी पालकी ले जाने वाले ये निर्दोष व्यक्ति इस अन्याय के कारण कष्ट उठा रहे हैं। उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है, क्योंकि तुमने अपनी पालकी ले जाने के लिए जबरन उन्हें लगा रखा है। इससे सिद्ध होता है कि तुम क्रूर तथा निर्दय हो। तो भी अहंकारवश तुम यह सोच रहे थे कि तुम प्रजा के रक्षक हो। यह हास्यास्पद है। तुम जैसे मूर्ख को ज्ञानी पुरुषों की सभा में भला कौन महान् पुरुष मान सकता है?

तात्पर्य : राजा रहूगण को अपने राजा होने का अभिमान था और वह सोचता था कि उसे अपनी प्रजा पर अपनी इच्छानुसार नियंत्रण रखने का उसे अधिकार था जबकि वह बेगारी में लोगों से पालकी ढुलवा कर अकारण ही उन्हें पीड़ित कर रहा था। इतने पर भी वह अपने को प्रजा का रक्षक मानता था। वस्तुतः राजा को श्रीभगवान् का प्रतिनिधि होना चाहिए। इसीलिए वह नरदेवता—अर्थात् मनुष्यों में राजा—कहलाता है किन्तु यदि राजा अपने को राज्य का प्रमुख समझकर प्रजा का उपयोग अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए करता है, तो वह गलती करता है। विद्वान ऐसी प्रवृत्ति की प्रशंसा नहीं करते। वैदिक नियमों के अनुसार राजा को विद्वान साधुओं, ब्राह्मणों तथा विद्वानों से सलाह लेनी चाहिए जो कि धर्मशास्त्र में दिये गये आदेशों के अनुसार सलाह देते हैं। राजा का धर्म है कि वह इन आदेशों को माने। विद्वानजन राजा द्वारा प्रजा का उपयोग कभी पसन्द नहीं करते। उसे चाहिए कि वह प्रजा को संरक्षण प्रदान करे। राजा को ऐसा दुष्ट नहीं सिद्ध होना चाहिए कि वह अपने स्वार्थ हेतु प्रजा का शोषण करे।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि कलियुग में राज्य के शासक डाकू तथा चोर होंगे। ये डाकू तथा चोर जनता के धन तथा उनकी सम्पत्ति को छल से या बलपूर्वक ले लेते हैं। इसीलिए श्रीमद्भागवत में कहा गया है—*राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्यु-धर्मभिः।* ज्यों-ज्यों कलियुग पास आ रहा है, ये लक्षण पहले से ही

दृष्टिगोचर होने लगे हैं। हम सोच सकते हैं कि कलियुग के अन्त तक मानवीय सभ्यता किस अधोगति को प्राप्त होगी। निस्संदेह, कोई ऐसा ज्ञानी पुरुष नहीं बचेगा जो ईश्वर को तथा उसके साथ हमारे सम्बन्धों को समझ सके। दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि सभी मनुष्य पशु तुल्य हो जाएँगे। उस समय समाज को सुधारने के लिए श्रीकृष्ण कल्कि अवतार के रूप में प्रकट होंगे। उनका कार्य होगा अन्ततः नास्तिकों का वध, क्योंकि अन्ततः विष्णु या कृष्ण ही वास्तविक त्राता हैं।

जब तथाकथित राजा तथा राज्य के आमात्य कुव्यवस्था फैलाते हैं, तो ईश्वर अवतार लेते हैं और व्यवस्था लाते हैं। श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं—*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।* निस्संदेह, इसमें अनेक वर्ष लगते हैं, किन्तु नियम यही है कि जब राजा या आमात्य उचित नियमों का पालन नहीं करते तो प्रकृति युद्ध, अकाल इत्यादि के रूप में दण्ड देती है। अतः यदि वे जीवन के परम उद्देश्य से परिचित नहीं हैं, तो उन्हें प्रजा पर शासन करने का भार नहीं लेना चाहिए। वस्तुतः प्रत्येक वस्तु के परम स्वामी तो भगवान् विष्णु हैं। वह सबों का पालक हैं। राजा, पिता तथा अभिभावक ये तो भगवान् विष्णु के प्रतिनिधिमात्र होते हैं जिनके ऊपर व्यवस्था की रखवाली तथा व्यवस्था को बनाये रखने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। अतः राजा का यह कर्तव्य है कि प्रजा को इस प्रकार रखे कि उसे अन्ततः जीवन-उद्देश्य का ज्ञान हो सके। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्।* दुर्भाग्यवश न तो राजा, न ही जनता यह जानती है कि जीवन का परम उद्देश्य भगवान् विष्णु को जानना और उन तक पहुँचना है। इस ज्ञान के अभाव में प्रत्येक व्यक्ति अज्ञान में रहता है और सारे समाज में वंचकों और वंचितों की भरमार हो जाती है।

यदा क्षितावेव चराचरस्य
विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ।
तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमूलं
निरूप्यतां सत्क्रिययानुमेयम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

यदा—अतः; क्षितौ—पृथ्वी पर; एव—निश्चय ही; चर-अचरस्य—चर तथा अचर का; विदाम—हम जानते हैं; निष्ठा—प्रलय, संहार; प्रभवम्—सृष्टि; च—तथा; नित्यम्—प्रकृति के नियमों से नियमित रूप से; तत्—वह; नामतः—केवल नाम से; अन्यत्—अन्य; व्यवहार-मूलम्—भौतिक कार्यों का कारण; निरूप्यताम्—निश्चित किया गया; सत्-क्रियया—वास्तविक कार्य से; अनुमेयम्—निष्कर्ष निकालना चाहिए।

हम इस पृथ्वी के ऊपर विभिन्न रूपों में जीवात्माएँ हैं। हममें से कुछ गतिशील हैं, तो कुछ

गति नहीं करते। हम सभी उत्पन्न होते हैं, कुछ समय तक रहते हैं और नष्ट हो जाने पर पृथ्वी में पुनः मिल जाते हैं। हम सभी पृथ्वी के विभिन्न रूपान्तर (पार्थिव) हैं; विभिन्न शरीर तथा उपाधियाँ पृथ्वी के रूपान्तर मात्र हैं और नाम के लिए ही विद्यमान रहती हैं, क्योंकि प्रत्येक वस्तु पृथ्वी से निकलती है और जब सब कुछ विनष्ट हो जाता है, तो वह फिर पृथ्वी में मिल जाती है। दूसरे शब्दों में, हम केवल धूल हैं और धूल ही रहेंगे। सबों को इस पर विचार करना चाहिए।

तात्पर्य : ब्रह्मसूत्र (२.१.१४) में कहा गया है कि— *तद्-अनन्यत्वम् आरभम्भण-शब्दादिभ्यः* । यह विराट् जगत् पदार्थ तथा आत्मा का मिश्रण है किन्तु इसका कारण तो परब्रह्म श्रीभगवान् हैं। अतः श्रीमद्भागवत (१.५.२०) में कहा गया है कि— *इदं हि विश्वं भगवानिवेतरः* । यह सम्पूर्ण विराट् जगत् श्रीभगवान् की शक्ति का रूपान्तर मात्र है, किन्तु मोहवश किसी की समझ में यह नहीं आता कि ईश्वर इस भौतिक जगत् से अभिन्न है। वस्तुतः वह भिन्न नहीं है। यह भौतिक जगत् उसकी विभिन्न शक्तियों का केवल रूपान्तर है— *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते* । वेदों में इसके अन्य रूप भी हैं— *सर्वं खल्विदं ब्रह्म* । द्रव्य तथा आत्मा भगवान् से अभिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.४) में इसकी पुष्टि की है— *मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा* । माया श्रीकृष्ण की शक्ति है, किन्तु वह उनसे पृथक् है। आत्म-शक्ति भी उन्हीं की शक्ति है, किन्तु यह उनसे अभिन्न है। जब यह माया परमात्मा की सेवा में तत्पर होती है, तो वह तथाकथित भौतिक शक्ति भी आत्मशक्ति में बदल जाती है, जिस प्रकार आग में रखने पर लोहा भी आग हो जाता है। जब हम विश्लेषण द्वारा यह समझ सकेंगे कि श्रीभगवान् कारणस्वरूप हैं, तो हमारा ज्ञान पूर्ण होगा। विभिन्न शक्तियों के रूपान्तर मात्र को समझ लेना अर्धज्ञान है। हमें परम कारण तक पहुँचना है। *न ते विदुः स्वार्थं गतिं हि विष्णुम्* । जो लोग समस्त स्रोतों के मूल कारण को जानने में रुचि नहीं रखते उनका ज्ञान कभी पूर्ण नहीं होता। इस प्रत्यक्ष संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो श्रीभगवान् की परम शक्ति से उत्पन्न न हो सके। पृथ्वी से प्राप्त सुगन्धियाँ पृथ्वी से ही उद्भूत हैं, भले ही हम उन्हें नाना प्रकार से व्यवहार में लाएं किन्तु इनका मूल कारण पृथ्वी ही है और कुछ नहीं। मिट्टी के बने जलपात्र का उपयोग भले ही हम कुछ काल तक जल भरने के लिए करें, किन्तु वह पात्र मिट्टी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतः पात्र में और उसके मूल अवयव के अर्थात् मिट्टी में कोई अन्तर नहीं है। यह मात्रशक्ति का विभिन्न परिवर्तन है। मूल कारण या मूल अवयव तो श्रीभगवान् हैं और

उसकी विभिन्न किस्में आनुषंगिक फल हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है—यथा सौम्यकेन मृतपिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद् वाचारम्भनां विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। पृथ्वी का अध्ययन करने वाले को स्वभावतः पृथ्वी के आनुषंगिक फलों का भी ज्ञान हो जाता है। इसीलिए वेद कहते हैं—यस्मिन् विज्ञाते सर्वम् एवं विज्ञातं भवति—यदि कोई आदि कारण कृष्ण को, जो समस्त कारणों के भी कारण हैं, जान लेता है, तो उसे प्रत्येक वस्तु का ज्ञान हो जाता है, भले ही वह विभिन्न किस्मों (प्रकारों) में प्रस्तुत क्यों न हो। इन विभिन्न किस्मों (प्रकारों) के मूल कारण को समझने पर प्रत्येक वस्तु का ज्ञान हो जाता है। यदि हम प्रत्येक वस्तु के मूल कारण श्रीकृष्ण को समझ सकें तो हमें उसकी गौण किस्मों (प्रकारों) को पृथक् से जानने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी। अतः प्रारम्भ से ही कहा गया है—सत्यं परं धीमहि। मनुष्य को परम सत्य श्रीकृष्ण या वासुदेव पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। वासुदेव शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सूचक है, जो समस्त कारणों के कारण हैं। मत्-स्थानि सर्व-भूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। यह प्रत्यक्ष तथा सात्त्विक दर्शन का सार है। व्यवहार-संसार तात्त्विक संसार पर आश्रित है। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ परमेश्वर की शक्ति के कारण विद्यमान है यद्यपि हमारी अविद्या के कारण परमेश्वर प्रत्येक पदार्थ में दिखाई नहीं पड़ता।

एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्त-

मसन्निधानात्परमाणवो ये ।

अविद्यया मनसा कल्पितास्ते

येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निरुक्तम्—मिथ्या वर्णन किया गया; क्षिति-शब्द—क्षिति अर्थात् “पृथ्वी” शब्द; वृत्तम्—उपस्थिति; असत्—असत्य; निधानात्—विलीन होने से; परम-अणवः—अत्यन्त सूक्ष्म कण; ये—जो सब; अविद्यया—अविद्या अर्थात् अज्ञान से; मनसा—मन से; कल्पिताः—कल्पना किये हुए; ते—वे; येषाम्—जिनका; समूहेन—समूह के द्वारा; कृतः—बनाया हुआ; विशेषः—विशेष।

कोई यह कह सकता है कि विविधता तो स्वयं पृथ्वी से उत्पन्न होती है। तथापि यह ब्रह्माण्ड भले ही थोड़े समय तक सत्य प्रतीत हो पर वास्तव में इसका कोई अस्तित्व नहीं है। यह पृथ्वी मूलतः सूक्ष्म कणों के संयोग से उत्पन्न हुई थी, किन्तु ये कण अस्थायी हैं। वास्तव में परमाणु ब्रह्माण्ड का कारण नहीं, यद्यपि कुछ दार्शनिक ऐसा सोचते हैं। यह सत्य नहीं है कि इस संसार में पाई जाने वाली विविधता (किस्में) परमाणुओं के उलट-पुलट या विविध संयोगों का

प्रतिफल है।

तात्पर्य : जो परमाणुवाद के समर्थक हैं उनका विचार है कि परमाणुओं के प्रोटान तथा इलेक्ट्रान मिलकर विभिन्न वस्तुओं की उत्पत्ति करते हैं। किन्तु वैज्ञानिकगण परमाणु के ही अस्तित्व का कारण खोजने में असमर्थ हैं। ऐसी दशा में हम यह नहीं कह सकते कि परमाणु ही ब्रह्माण्ड का कारणस्वरूप है। ऐसे सिद्धान्त अज्ञानी लोग प्रस्तुत करते हैं। वास्तविक बुद्धि के अनुसार इस विराट् जगत का असली कारण परमेश्वर है। *जन्माद्यस्य यतः*—वह समस्त सृष्टि का मूल कारण है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१०.८) में कहा गया है—*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते*—कृष्ण ही मूल कारण हैं। *सर्व कारण-कारणं*—वह समस्त कारणों के कारण हैं। कृष्ण ही परमाणु अथवा भौतिक ऊर्जा (शक्ति) के कारण हैं (*भगवद्गीता* ७.४)—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

परम कारण भगवान् हैं और केवल अज्ञानी व्यक्ति ही विभिन्न सिद्धान्तों के द्वारा अन्य कारणों की खोज का प्रयत्न करते हैं।

एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यद्

असच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ।

द्रव्यस्वभावाशयकालकर्म-

नाम्नाजयावेहि कृतं द्वितीयम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; कृशम्—दुर्बल या छोटा; स्थूलम्—मोटा; अणुः—लघु; बृहत्—बड़ा; यत्—जो; असत्—अस्थायी; च—तथा; सत्—अस्तित्वमान्; जीवम्—जीवात्मा; अजीवम्—जड़, जीवरहित पदार्थ; अन्यत्—अन्य कारण; द्रव्य—घटना; स्व-भाव—प्रकृति, आचरण; आशय—मन्तव्य; काल—समय; कर्म—कार्य, वृत्ति; नाम्ना—नामों से; अजया—प्रकृति द्वारा; अवेहि—तुम्हें समझना चाहिए; कृतम्—किया गया; द्वितीयम्—द्वैत।

चूँकि इस ब्रह्माण्ड का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है, अतः इसके भीतर की वस्तुएँ—यथा लघुता, अन्तर, स्थूलता, कृशता, सूक्ष्मता, विशालता, परिणाम, कारण, कार्य, चेतना तथा द्रव्य—ये सब काल्पनिक हैं। ये एक ही वस्तु-मिट्टी के बने पात्र हैं, किन्तु इनके नाम भिन्न-भिन्न हैं। ये अन्तर पदार्थ, प्रकृति, आशय, काल तथा क्रिया (कर्म) द्वारा जाने जाते हैं। तुम्हें जानना चाहिए कि ये प्रकृति द्वारा उत्पन्न यांत्रिक अभिव्यक्तियाँ हैं।

तात्पर्य : इस जगत में क्षणिक अभिव्यक्तियाँ तथा विविधताएँ विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत भौतिक प्रकृति की सृष्टियाँ हैं—*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।* कभी-कभी प्रकृति द्वारा सम्पन्न कर्म तथा फल को हम वैज्ञानिक आविष्कार मान बैठते हैं और इस प्रकार ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करके वाहवाही लूटते हैं। इसका उल्लेख *भगवद्गीता* (३.२७) में हुआ है—*अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते*—बहिरंगा शक्ति के द्वारा प्रच्छन्न होने से जीवात्मा इस जगत की विभिन्न सृष्टियों का यश लूटना चाहता है। वस्तुतः ये सभी भगवान् की शक्ति से गतिमान होकर स्वतः उत्पन्न होती हैं। अतः चरम कारण तो परम पुरुष है। *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

वह समस्त कारणों का कारण—परम कारण है। इस प्रसंग में श्रील मध्वाचार्य का कहना है—*एवं सर्वं तथा प्रकृत्वयै कल्पितं विष्णोरन्यत्। एवं प्रकृत्याधारः स्वयं अनन्याधारो विष्णुरेव। अतः सर्व-शब्दाश्च तस्मिन्नेव।* वस्तुतः विष्णु ही मूल कारण हैं, किन्तु अज्ञानवश मनुष्य सोचता है कि पदार्थ ही प्रत्येक वस्तु का कारण है।

राजा गोप्ताश्रयो भूमिः शरणं चेति लौकिकः।

व्यवहारो न तत् सत्यं तयोर्ब्रह्माश्रयो विभुः ॥

ये बातें ऊपर-ऊपर सोची जाती हैं, किन्तु सत्य यह नहीं है। प्रत्येक प्राणी का वास्तविक रक्षक तथा आश्रय परब्रह्म होता है, राजा नहीं।

गोप्त्री च तस्य प्रकृतिस्तस्या विष्णुः स्वयं प्रभुः।

तव गोप्त्री तु पृथ्वी न त्वं गोप्ता क्षितेः स्मृतः ॥

अतः सर्वाश्रयैश्चैव गोप्ता च हरिरीश्वरः।

सर्वशब्दाभिधेयश्च शब्दवृत्तेहि कारणम् ॥

सर्वान्तरः सर्वबहिरेक एव जनार्दनः ॥

वास्तविक रक्षक तो प्रकृति है, किन्तु विष्णु उसका भी स्वामी है। वह प्रत्येक वस्तु का स्वामी है। भगवान् जनार्दन अन्तः तथा बाह्य दोनों रूप में अधीक्षक हैं। वे वाणी तथा शब्दों से जो भी व्यक्त होता

है उसके कारण हैं।

शिरसोधरता यद्वद् ग्रीवायास्तद्वदेव तु।

आश्रयत्वं च गोप्तृत्वम् अन्येषाम् उपचारतः ॥

भगवान् विष्णु सम्पूर्ण सृष्टि के विश्राम-स्थल-हैं *ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्* (भगवद्गीता १४.२७) । ब्रह्म पर ही सब कुछ टिका है। सभी ब्रह्माण्ड *ब्रह्मज्योति* पर टिके हैं और सभी लोक (ग्रह) वायुमण्डल में टिके हैं। प्रत्येक लोक में समुद्र, पर्वत, राज्य, साम्राज्य हैं और प्रत्येक लोक में न जाने कितनी जीवात्माएँ आश्रय पाती हैं। ये जीवात्माएँ पैरों, जाँघों, कटि, कंधों की पृथ्वी पर खड़ी हैं, किन्तु वस्तुतः प्रत्येक वस्तु श्रीभगवान् की शक्तियों पर टिकी है। इसलिए अन्ततोगत्वा वह *सर्व-कारण-कारणम्* कहे जाते हैं।

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक-

मनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।

प्रत्यक्प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं

यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ज्ञानम्—परम ज्ञान; विशुद्धम्—कल्मषहीन, शुद्ध; परम-अर्थम्—जीवन का परम उद्देश्य प्रदान करने वाला; एकम्—एक; अनन्तरम्—अन्तरविहीन; तु—भी; अबहिः—बाह्यरहित; ब्रह्म—ब्रह्म, परम; सत्यम्—परम सत्य; प्रत्यक्—आन्तरिक, आभ्यन्तर; प्रशान्तम्—शान्त परमेश्वर, जिसकी उपासना योगी करते हैं; भगवत्-शब्द-संज्ञम्—भगवान् शब्द से ज्ञात अथवा सम्पूर्ण ऐश्वर्य से पूर्ण; यत्—उस; वासुदेवम्—श्रीकृष्ण, वसुदेव के पुत्र को; कवयः—बुद्धिमान अथवा विद्वान्; वदन्ति—कहते हैं।

तो फिर परम सत्य क्या है? उत्तर है अद्वैत ज्ञान जो भौतिक गुणों के कल्मष से रहित है। वह मुक्तिप्रदायक है। वह अद्वितीय, सर्वव्यापी तथा कल्पनातीत है। उस ज्ञान की प्रथम प्रतीति ब्रह्म है। फिर योगियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला परमात्मा है। जो बिना किसी कष्ट के उसे देखने का प्रयास करते हैं यह प्रतीति की दूसरी अवस्था है। अन्त में परम पुरुष में ही उसी परम ज्ञान की पूर्ण प्रतीति की जाती है। सभी विद्वान् परम पुरुष को वासुदेव के रूप में वर्णन करते हैं, जो ब्रह्म, परमात्मा आदि का कारण है।

तात्पर्य : *चैतन्य चरितामृत* में कहा गया है—*यद् अद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा*। परम सत्य का निर्गुण-ब्रह्मतेज पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दैहिक किरणों का बना होता है। *य आत्मान्तरयामी पुरुष*

इति सोऽस्यांश-विभवः । आत्मा तथा अन्तर्यामी अथवा परमात्मा श्रीभगवान् का ही विस्तार है । षड्-
ऐश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान् स स्वयं अयम् । जिसे श्रीभगवान् कहा गया है और जो छः ऐश्वर्यों से
ओतप्रोत है वह वासुदेव है और श्री चैतन्य महाप्रभु उससे अभिन्न हैं । बड़े-बड़े विद्वान तथा दार्शनिक
अनेक जन्मों के बाद इसे स्वीकार करते हैं । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः (भगवद्गीता
७.१९) । बुद्धिमान मनुष्य जान सकते हैं कि अन्ततः वासुदेव कृष्ण ही ब्रह्म तथा परमात्मा के कारण हैं ।
इस प्रकार वासुदेव सर्वकारण-कारणम् है । इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (१.२.११) में की गई है ।

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

वास्तविक तत्त्व अर्थात् परम सत्य तो भगवान् हैं, किन्तु परम सत्य की अपूर्ण प्रतीति से कभी
कभी लोग उसी विष्णु को निर्गुण ब्रह्म या अन्तर्यामी परमात्मा कहते हैं ।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में ही कहा गया है— सत्यं परं धीमहि —हम परम सत्य का ध्यान करते
हैं । यहाँ पर परम सत्य को ज्ञानं विशुद्धं सत्यम् के रूप में बताया गया है । परम सत्य कल्मषरहित एवं
दिव्य होता है । इससे सभी आत्म-सिद्धियाँ एवं भौतिक जगत से मुक्ति प्राप्त होती है । परम सत्य तो
वासुदेव कृष्ण हैं । कृष्ण के बाह्य तथा अन्तः में कोई अन्तर नहीं है । वे पूर्ण हैं । उनके शरीर तथा
आत्मा में हमारे-जैसा अन्तर नहीं है । कभी-कभी तथाकथित विद्वान कृष्ण की वास्तविक स्थिति से
परिचित न होने के कारण लोगों को यह कह कर गुमराह करते रहते हैं कि अन्तःकरण में स्थित कृष्ण
बाह्य रूप में स्थित कृष्ण से भिन्न हैं । मन्मना भव भद्रभक्तो मद्याजी मां नमस्करु—कृष्ण के इस कथन
के अनुसार कुछ तथाकथित विद्वान पाठकों (श्रोताओं) को यह उपदेश देते हैं कि हमें व्यक्ति-कृष्ण को
समर्पण न करके आन्तरिक कृष्ण को करना चाहिए । ये तथाकथित मायावादी विद्वान अपने अल्पज्ञान से
कृष्ण को कभी नहीं समझ पाएँगे । अतः मनुष्य को किसी प्रामाणिक व्यक्ति के पास जाना चाहिए
जिससे वे कृष्ण को समझ सकेंगे । सद्गुरु कृष्ण को वास्तव में सदा देखे रहता है, अतः वही उसका
सही-सही वर्णन कर सकता है । तभी तो भगवद्गीता (४.३४) में कहा गया है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

बिना अधिकारी विद्वान के पास गये कृष्ण को नहीं समझा जा सकता।

रहूगणैतत्तपसा न याति

न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ।

न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-

र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

रहूगण—हे राजा रहूगण; एतत्—यह ज्ञान; तपसा—कठिन तपस्या द्वारा; न याति—नहीं आता; न—नहीं; च—भी; इज्यया—श्रीविग्रह की पूजा के लिए महत् आयोजन से; निर्वपणात्—अथवा समस्त सांसारिक कर्तव्यों को पूरा करने और संन्यास ग्रहण करने से; गृहात्—आदर्श गृहस्थ जीवन से; वा—अथवा; न—न तो; छन्दसा—ब्रह्मचर्य धारण करने या वेदों के अध्ययन से; न एव—न तो; जल-अग्नि-सूर्यैः—जल, तपती धूप या जलती अग्नि में रह कर कठिन तपस्या करने से; विना—रहित; महत्—परम भक्तों की; पाद-रजः—चरण धूलि में; अभिषेकम्—शरीर मार्जन, स्नान।

हे राजा रहूगण, महापुरुषों के चरणकमलों की धूलि से सम्पूर्ण शरीर को मलने के लिए बिना परम सत्य की प्रतीति नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य धारण करने, गृहस्थ जीवन के विधि-विधानों के अनुपालन, वानप्रस्थ के रूप में गृहत्याग अथवा संन्यास ग्रहण करने या शीत ऋतु में जल में घुस कर घोर तपस्या करने, या ग्रीष्म में अग्नि से घिर रहने झुलसती धूप में पड़े रहने जैसी कठिन तपस्याओं से परम सत्य की प्रतीति नहीं हो सकती। परम सत्य को जानने के और भी अनेक साधन हैं, किन्तु परम सत्य उसे ही प्राप्त होता है, जिसे किसी महान् भक्त का अनुग्रह प्राप्त हो।

तात्पर्य : केवल विशुद्ध भक्त ही किसी को दिव्य आनन्द का वास्तविक ज्ञान प्रदान कर सकता है। वेदेषु दुर्लभम् अदुर्लभम् आत्म-भक्तौ। केवल वेदों के आदेशों के पालन से आत्मसिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। मनुष्य को विशुद्ध भक्त के पास पहुँचना होता है—अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृत्तम्। ऐसे भक्त के अनुग्रह से परम सत्य कृष्ण और उनसे अपने सम्बन्ध को समझा जा सकता है। भौतिकवादी व्यक्ति कभी-कभी सोच बैठता है कि पुण्यकर्म करके तथा घर पर ही रह करके ही परम सत्य को समझा जा सकता है। इस श्लोक में इसको अस्वीकार किया गया है। न ही कोई ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करके परम सत्य को जान सकता है। मनुष्य को केवल शुद्ध भक्त की सेवा करनी होती है। इससे परम सत्य समझ में आ जाएगा।

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः

प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ।

निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-

र्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जिस स्थान में (भक्तों के समक्ष); उत्तम-श्लोक-गुण-अनुवादः—श्रीभगवान् की लीलाओं तथा गुणों की चर्चा; प्रस्तूयते—प्रस्तुत की जाती है; ग्राम्य-कथा-विघातः—जिसके कारण लौकिक विषयों की चर्चा के लिए अवसर नहीं मिलता; निषेव्यमाणः—अत्यन्त मनोयोग से सुनी जाकर; अनुदिनम्—नित्यप्रति; मुमुक्षोः—भौतिक बंधन से निकलने के लिए इच्छुक व्यक्ति का; मतिम्—ध्यान; सतीम्—शुद्ध तथा सरल; यच्छति—लगा देती है; वासुदेवे—भगवान् वासुदेव के चरमकमलों में।

यहां वर्णित वे शुद्ध भक्त कौन हैं? शुद्ध भक्तों की सभा में राजनीति या समाजशास्त्र जैसे सांसारिक विषयों पर चर्चा चलाने का प्रश्न ही नहीं उठता। वहाँ तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं, स्वरूप एवं गुणों की ही चर्चा होती है। उनकी प्रशंसा तथा उपासना पूर्ण मनोयोग से की जाती है। यहाँ तक कि विशुद्ध भक्तों की संगति से, ऐसे विषयों को लगातार आदर पूर्वक सुनने से ऐसा पुरुष जो परम सत्य में तदाकार होना चाहता है, वह भी अपने इस विचार को त्याग कर क्रमशः वासुदेव की सेवा में आसक्त हो जाता है।

तात्पर्य : इस श्लोक में शुद्ध भक्तों के लक्षण बताये गये हैं। शुद्ध भक्त कभी भी सांसारिक विषयों में रुचि नहीं रखता। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों को सांसारिक विषयों के सम्बन्ध में चर्चा करने के लिए वर्जित किया है। ग्राम्य-वार्ता ना कहिबे—मनुष्य को चाहिए कि भौतिक जगत के समाचारों के विषय में वृथा चर्चा करने में संलग्न न हो। मनुष्य को इस प्रकार से समय नहीं गँवाना चाहिए। भक्त के जीवन का यह महत्त्वपूर्ण लक्षण है। भक्त के समक्ष श्रीकृष्ण की सेवा के अतिरिक्त कोई अन्य ध्येय नहीं होता। कृष्णभावनामृत आन्दोलन को इसलिए चलाया गया था जिससे लोगों को भगवान् की सेवा में निरन्तर व्यस्त रखा जा सके। इस संस्था के विद्यार्थी प्रातः पाँच बजे से लेकर रात्रि के दस बजे तक कृष्णभक्ति का अनुशीलन करते हैं। उन्हें राजनीति, समाजशास्त्र तथा सामयिक विषयों की वृथा चर्चा में समय गँवाने का अवसर ही नहीं मिल पाता। यह सब तो चलता ही रहेगा। भक्त को सकारात्मक और गम्भीर रूप से कृष्ण की भक्ति से सरोकार होता है।

अहं पुरा भरतो नाम राजा

विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ।

आराधनं भगवत ईहमानो

मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; पुरा—पहले (पूर्व जन्म में); भरतः नाम राजा—भरत नाम का राजा; विमुक्त—मुक्त; दृष्ट-श्रुत—प्रत्यक्ष अनुभव से अथवा वेदों से ज्ञान प्राप्त करके; सङ्ग-बन्धः—संगति का बन्धन; आराधनम्—पूजा; भगवतः—भगवान् की; ईहमानः—सदैव करते हुए; मृगः अभवम्—मैं मृग बन गया; मृग-सङ्गात्—मृग के साथ घनिष्ठ मैत्री से; हत-अर्थः—भक्ति के विधि-विधानों की उपेक्षा करके।

मैं पूर्वजन्म में महाराज भरत के नाम से विख्यात था। मैंने प्रत्यक्ष अनुभव तथा वेद-ज्ञान से प्राप्त अप्रत्यक्ष अनुभव द्वारा सांसारिक कार्यों से पूर्णतया विरक्त होकर सिद्धि प्राप्त की। मैं पूर्णतया भगवान् की सेवा में तत्पर रहता था, किन्तु दुर्भाग्यवश मैं एक छोटे से मृग के प्रति इतना आसक्त हो उठा कि मैंने सारे आध्यात्मिक कर्तव्यों की उपेक्षा कर दी। मृग के प्रति प्रगाढ़ स्नेह के कारण अगले जन्म में मुझे मृग का शरीर अंगीकार करना पड़ा।

तात्पर्य : यहाँ पर वर्णित घटना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पूर्ववर्ती श्लोक में कहा गया है—*विना महत्-पाद-रजोऽभिषेकम्—महापुरुष के चरणकमल की धूलि को सिर पर धारण किये बिना सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। यदि सद्गुरु के आदेशों का निरन्तर पालन किया जाये तो गिरने का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु ज्योंही अज्ञानी शिष्य महत्त्वाकांक्षा के कारण अपने गुरु का स्थान बलात् लेने का प्रयास करता है त्योंही उसका पतन हो जाता है। यस्य प्रसादाद् भगवत्-प्रसादो यस्याप्रसादात्न गतिः कुतोऽपि।* यदि शिष्य गुरु को सामान्य व्यक्ति मानता है, तो उसकी प्रगति रुक जाती है। भक्ति करते हुए भी भरत महाराज ने मृग के प्रति अत्यधिक आसक्त होने पर किसी गुरु से सलाह नहीं ली। फलतः वे मृग से अत्यधिक आसक्त हो गये और अपने नैतिक कर्म भूल जाने से नीचे गिर गये।

सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर

कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ।

अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो

विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; माम्—मुझको; स्मृतिः—पूर्वजन्म के कर्मों की याद; मृग-देहे—मृग के शरीर में; अपि—यद्यपि; वीर—हे वीर; कृष्ण-अर्चन-प्रभवा—श्रीकृष्ण की एकनिष्ठ सेवा के प्रभाव से प्रकट; नो जहाति—नहीं छोड़ पाई; अथो—अतः; अहम्—मैं; जन-सङ्गात्—सामान्य पुरुषों के संसर्ग से; असङ्गः—पूर्णतया विरक्त; विशङ्कमानः—भयभीत होकर; अविवृतः—दूसरों से अलक्षित, गुप्त; चरामि—इधर-उधर घूमता हूँ।

हे वीर राजा, अपनी पूर्व अनन्य भगवत्-भक्ति के फलस्वरूप मृग शरीर में रहकर भी मुझे

पूर्वजन्म की प्रत्येक वस्तु स्मरण रही। चूँकि मैं अपने पूर्वजन्म के पतन से परिचित हूँ, अतः मैं सामान्य व्यक्तियों के संसर्ग से अपने को दूर रखता हूँ। उनकी कुसंगति से डरकर मैं अलक्षित (गुप्त) होकर अकेला घूमता फिरता हूँ।

तात्पर्य : भगवद्गीता (२.४०) में कहा गया है— स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य । सचमुच ही मनुष्य जीवन से पशु जीवन में पहुँचना महान् पतन है किन्तु भगवद्भक्ति कभी वृथा नहीं जाती जैसाकि जड़ भरत या अन्य भक्तों के प्रसंग में देखा जाता है। भगवद्गीता का (८.६) कथन है— यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । प्राकृतिक नियम के अनुसार मृत्यु के समय मन विशेष प्रकार के ध्यान में तल्लीन रहता है। इससे पशु जीवन मिल सकता है, किन्तु भक्त के लिए इससे कोई हानि नहीं पहुँचती। भरत महाराज को मृग शरीर प्राप्त होने पर भी अपनी पूर्वस्थिति स्मरण रही, फलतः मृग शरीर में भी उन्हें अपने पतन का कारण भली-भाँति स्मरण रहा। इसके कारण ही उनका जन्म अत्यन्त पवित्र ब्राह्मणकुल में हुआ। इस तरह उनकी भगवत्-सेवा वृथा नहीं गई।

तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजात-

ज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ।

हरिं तदीहाकथनश्रुताभ्यां

लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इस कारण से; नरः—प्रत्येक व्यक्ति; असङ्ग—सांसारिक पुरुषों के संसर्ग से विरक्त होकर; सु-सङ्ग—भक्तों की संगति से; जात—उत्पन्न; ज्ञान-असिना—ज्ञान रूपी तलवार से; इह—इस भौतिक जगत में; एव—यहाँ तक कि; विवृक्ण-मोहः—मोह छिन्न-छिन्न हो जाता है; हरिम्—श्रीभगवान्; तद्-ईहा—उनके कार्यों का; कथन-श्रुताभ्याम्—श्रवण तथा कीर्तन इन दो विधियों से; लब्ध-स्मृतिः—खोई चेतना प्राप्त हो जाती है; याति—प्राप्त करता है; अतिपारम्—परम अन्त; अध्वनः—परम धाम का।

उन्नत भक्तों की संगति मात्र से पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और फिर ज्ञान की तलवार से सांसारिक मोहों को छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। भक्तों की संगति से ही श्रवण तथा कीर्तन (श्रवणं कीर्तनम्) द्वारा भगवान् की सेवा में अनुरक्त हुआ जा सकता है। इस प्रकार से अपने सुप्त कृष्णभावनामृत को जागृत किया जा सकता है और कृष्णभावनामृत के अनुशीलन द्वारा इसी जीवन में परमधाम को वापस जाया जा सकता है।

तात्पर्य : भव-बंधन से मुक्त होने के लिए सांसारिक व्यक्तियों की संगति त्याग करके भक्तों की

संगति करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सकारात्मक तथा नकारात्मक विधियाँ बताई गई हैं। भक्तों की संगति से सुप्त कृष्णभावनामृत जागृत होती है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन सबों के लिए यह अवसर प्रदान कर रहा है। जो भी कृष्णभक्ति में आगे बढ़ना चाहता है उसे हम आश्रय देते हैं। हम उनके रहने तथा भोजन की व्यवस्था करते हैं जिससे वे शान्तिपूर्वक कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करके इसी जीवन में परम धाम को प्राप्त हो सकें।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “महाराज रहूगण तथा जड़ भरत की वार्ता” नामक बारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।